National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.newresearchjournal.com
ISSN: 2455-9040
Received: 08-09-2024, Accepted: 09-10-2024, Published: 24-10-2024
Volume 9, Issue 4, 2024, Page No. 11-14

श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समन्वय–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 विभा चौहान[1], निधि राजौरिया[2]
[1] एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जे0एस0 यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] शिक्षा विभाग, जे0एस0 यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
विज्ञान और तकनीकी के इस युग में विकास के बावजूद भी मानव के जन्म लेने, बूढ़े तथा बीमार होने और अन्त में विनष्ट होने में कोई परिवर्तन नहीं आया। क्योंकि किसी भी वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के किसी भी स्तर तक प्रगति करने पर इन सांसारिक कलेशों को दूर नहीं किया जा सकता है। जीवन के दुख और सुख की मात्रा नियति द्वारा किये गये पूर्व कर्मों के आधार पर जन्म के समय ही निर्धारित कर दी जाती है। भगवान की शरणागत हुये बिना इन कलेशों से मुक्ति नहीं मिल सकती है। यद्यपि मोबाइल, कम्प्यूटर, टीवी तथा अन्य इलैक्ट्रॉनिक उपकरण हमारे शरीर व इन्द्रियों के लिये प्रत्यक्ष रुप ले तो काफी सुखदायक हैं किन्तु फिर भी हम दुखों से बच नहीं पाते। आजकल दुखों ने तनाव, चिंता, अवसाद, हीनभावना, अस्तित्व बनाये रखने की होड़ में एक–दूसरे का गलाकाट प्रतिस्पर्धा, मानसिक रोगों का रुप धारण कर लिया है तो और भी कष्टदायक है। श्रीमद्भगवदगीता में इन सबका समाधान दिया गया है और यह आधुनिक समय के लिये सबसे अधिक प्रासंगिक है। यही कारण है कि भारतीयों से अधिक अमेरिकी, यूरोपियन तथा विश्व के कोने–कोने से लोग कृष्ण भावनामृत विधि की प्रशंसा कर रहे हैं। लोगों ने कृष्ण भावनाव्रत को न केवल स्वीकार किया बल्कि अपने कष्टों से राहत का अनुभव भी कर रहे है। श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य को जाति–पाति, रंग, राष्ट्रीयता भाषा, आयु सीमा, शैक्षिक योग्यता समय स्थान, परिस्थिति से ऊँचा उठाती है एवं अपने दिव्य उपदेशों से मानव मात्र का कल्याण करती है।

मूल शब्दः श्रीमद्भगवद्गीता, शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक तथ्य, तकनीकी विकास

विधाता की बनाई हुई इस सृष्टि में मनुष्य की एक मात्र बुद्धि जीवी प्राणी है। मनुष्य व अन्य जीवों में यही मूलभूत अन्तर है कि मनुष्य अपने तर्क व युक्तियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। लेकिन अन्य जीव यह कार्य नहीं कर सकते। मनुष्य अपने चिंतन–मनन द्वारा जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसे ही दर्शन कहा जाता है।

वस्तुतः दर्शन से तात्पर्य चिंतन द्वारा सत्यानुभूति करने से है। सत्य की अनुभूति कर लेना ही पारलौकिक शक्तियों की प्राप्ति है। मन की इस अमूर्त चिंतन की स्थिति का आधार मनोविज्ञान ही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी शैक्षिक समस्याओं, पाठ्यक्रमों का निर्धारण शिक्षण विधियों, बाल केन्द्रित शिक्षा आदि का आधार भी मनोविज्ञान ही है। इसी तथ्य पर वर्णित विचार शिक्षा के क्षेत्र में स्तम्भ के समान स्थापित हैं, और उसे प्रदान करने वाले विचारक स्तम्भकार हैं।

भारत भूमि में प्राचीन समय से ही विभिन्न विशेषज्ञ दार्शनिक, समाजसुधारक, विद्वान एवं अथाह ज्ञान के भण्डार साहित्यिक ग्रन्थ वेद, पुराण आदि का भण्डार है। इनके ज्ञान की ज्योति ने न सिर्फ प्राचीन विचाराधारा को समृद्ध किया बल्कि समय–समय पर समाज को एक नई दिशा मिली है। वस्तुतः सामाजिक विचार धारा मनुष्य के मस्तिक की उपज है। यदि मनुष्य सकारात्मक सोच के साथ अपनी विचारधारा को समाज कल्याण के लिये प्रदर्शित करता है तो सामाजिक विचारधारा सकारात्मक बन जाती है, और यदि उसकी विचार धारा नकारात्मक संदेश देती है, तो सामाजिक विचारधारा भी नकारात्मक बन जाती है। यही मनोस्थिति मानव के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है।

असीम ज्ञान का भण्डार श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के मनोभावों को आज की परिस्थितियों से यदि जोड़ा जाय तो यह मनोवैज्ञानिक भावों का प्रत्यक्षीकरण है। गीता का यही मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण व्यावहारिक दर्शन भी है। गीता में श्री कृष्ण द्वारा दिये गये अर्जुन को आध्यात्मिक उपदेशों में वह आधिभौतिक व मनोवैज्ञानिक भाव छिपे हैं। जिनके पठन पाठन, चिंतन–मनन से मानव समाज में कल्याण कारी कदम बिखेरे जा सकते हैं। गीता का मनोवैज्ञानिक सार यह है कि योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के मिलन से प्राप्त ज्ञान के द्वारा जीवन के कठिन से कठिन मार्ग को भी सफल बनाया जा सकता है।

शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समन्वय

समाज में व्याप्त बौद्धिक, भौतिक, नैतिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक विश्रृंखला ने समाज को पुर्नगठित करने की आवश्यकता महसूस होने लगी है। ऐसी स्थिति में कर्मयोगी श्रीकृष्ण के मुख से निष्काम कर्म का संदेश मानव मात्र के लिए औषधि के समान है जो व्यक्तियों को कर्तव्य पथ पर निरन्तर आरूढ़ रहने के लिये शिक्षा दे रहा है क्योंकि संसार के प्रत्येक प्रगति या कार्य कर्म पर आश्रित है, कर्म के बिना कुछ भी नहीं है।

इस तरह गीता में ज्ञान, कर्म एवं योग का समन्वय दृष्टिगोचर है। 21वीं सदी की शिक्षा की भी यही माँग है कि भौतिकता के साथ आध्यात्मिक मूल्यों को भी शिक्षा में स्थान दे ताकि मानव मात्र का विकास हो, मानव को उसकी सहज प्रवृत्तियों के अनुरूप शिक्षा दी जाये, इसलिये शिक्षक (परमात्मा) को अवतरित होना पड़ेगा तो अवतार ले।

गीता में वर्णित शैक्षिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक विचार किसी काल विशेष के लिये उपयोगी नहीं है बल्कि सर्वाकालिक है सर्वोपरि हैं। भारत की वर्तमान माँग के अनुरूप है। इन विचारों को अपना कर शिक्षा के वैयक्तिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, उद्देश्यों की पूर्ति एवं भौतिकवादी प्रगति के साथ मानव समुदाय का कल्याण सम्भव है।

वैज्ञानिक व भौतिक युग ने समाज में बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आध्यात्मिक एवं शैक्षिक क्षेत्र में विकृतियाँ उत्पन्न कर दी है जिसने मानवीय विचारों को झकझोर दिया है, मानव सत्य व असत्य का निर्णय नहीं कर पा रहा है। इस बदलती स्थिति में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो मानव मात्र को सन्मार्ग की ओर ले जाये।

'जो कर्म करने में तेरा अधिकार हों फल में नहीं'' का उपदेश देकर शिक्षा में श्रम के महत्व को बताता है। इस रूप में गीता को कृष्ण–अर्जुन संवाद के रूप में देखा जाता है। यह एक उच्च श्रेणी का काव्य है, जिसमें ज्ञान, कर्म व भक्ति का अभूतपूर्ण समन्वय दिखाई देता है। गीता के अनुसार– 'निष्काम कर्म' से तात्पर्य है कि हम कर्म इस प्रकार करे कि कोई बन्धन हमें जकड़ न सके। अर्थात् निष्काम का अभिप्राय वैयक्तिक कामना से नहीं वरन् विश्वात्मा जो हमारी आत्मा का ही उच्च पक्ष है, की कामना से कार्य करना। कर्म का अर्थ है, अपने–अपने वर्ण, धर्मानुसार अथवा स्वभाव और शक्ति के अनुसार देव, गुरु तथा पितरों के प्रति अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करना। गीता में वर्णाश्रम के धर्म को स्वभाव (गुण व कर्म) के आधार पर माना है, जन्म के आधार पर नहीं। स्वधर्म वह कर्म हैं जो हमारी आत्मा के अनुकूल हो अर्थात् शिक्षा देते समय व्यक्ति के गुण व कर्मों को आधार बनाया जाये न कि जन्म को ऐसा श्री कृष्ण ने गीता में कहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि में वे घटनायें समाविष्ट हैं जो पाँच हजार वर्ष पूर्व कुरुवंश में उस समय घटी जब वे समस्त विश्व पर शासन कर रहे थे। चूँकि धृतराष्ट्र अन्धे थे। इसलिये पाण्डु सिंहासन पर बैठे, किन्तु उनकी असमय मृत्यु हो गई। उस समय पाण्डु पुत्र अल्पवय होने के कारण राजकार्य संभालने योग्य नहीं थे। अतः धृतराष्ट्र सिंहासन पर बैठे और उन्हें तब तक कार्यभार संभालना था जब तक पाण्डुपुत्र बड़े नहीं हो जाते, लेकिन पाण्डु पुत्रों के बड़े हो जाने पर धृतराष्ट्र ने उन्हें राज्य नहीं लौटाया। अपितु उन्हें धूत क्रीड़ा में छला गया और चौदह वर्ष के दीर्घ काल के लिये वनवास भेज दिया। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव राज्य के प्रति अत्यधिक आसक्त व आसुरी प्रवृत्ति के थे। समझौता यह हुआ कि यदि पाण्डव अपना वनवास काल पूर्ण कर लेते हैं और अंतिम वर्ष अज्ञातवास में व्यतीत करते हैं तो उन्हें उनका राज्य लौटा दिया जायेगा। भगवान की कृपा से पाण्डव इस कसौटी पर खरे उतरे। बावजूद इसके कौरव उन्हें सूई की नौंक भर की भूमि देने को तैयार नहीं हुये, राज्य की तो बात ही छोड़िये। श्री कृष्ण शान्ति दूत बनकर गये, किन्तु शान्ति प्रस्ताव स्वीकार करने की बजाय कौरवों के प्रमुख दुर्योधन द्वारा सहस्त्रों सैनिकों के द्वारा बन्दी बनाये जाने का प्रयास किया गया। तब श्री कृष्ण ने परम पुरुषोत्तम भगवान के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले अपने विश्वरुप को प्रकट किया। फिर भी मूढ़ दुर्योधन पाण्डवों को पराजित करने के लिये दृढ़संकल्पित रहा। अब कुरुक्षेत्र का युद्ध अटल था।

इस प्रकार युद्ध क्षेत्र में पहुँचे अर्जुन ने विपक्षी दलों को देखने के लिये जब अपने रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करवाया, तो वह विपक्षी दलों में अपने चिर–परिचितों, रक्त सम्बन्धियों को देखकर दिग्भ्रमित हो जाते हैं। और युद्ध कर्म करने से विरत विमुख होते है। ऐसे में श्रीकृष्ण अपने रहस्मयी व ज्ञानमयी उपदेशों से उसे युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं अर्जुन की इन्हीं मनोदशाओं एवं मनोभावों तथा श्रीकृष्ण के उपदेशों को इस अध्याय में मनोविज्ञान से जोड़ने का प्रयास किया है और उससे शैक्षिक समस्याओं का समाधान ढूढ़ने का विनम्र प्रयास किया है जो कि इस प्रकार है–

संवेगात्मक अवस्थाओं पर नियन्त्रण का मनोविज्ञान

1. संन्यासं कर्मणां .....शान्ति मृच्छति।। (29)

श्रीमद्भगवदगीता के पाँचवे अध्याय का प्रारम्भ उस श्लोक से होता है जिसमें अर्जुन श्रीकृष्ण से शंका समाधान हेतु प्रश्न करते हैं कि कर्म त्यागने में तथा भक्ति पूर्वक कर्म करने में दोनों में से कौन सा लाभप्रद है? श्रीकृष्ण का उत्तर है कि कर्म परित्याग से भक्तियुक्त कर्म श्रेष्ठ है। फिर मानव जीवन का चरम लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार है । अतः इन्द्रियों को वश में रखते हुये कर्म करना ही श्रेष्ठ है। तभी आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति हो सकती है। मनोविज्ञान भी आत्म–साक्षात्कार की प्राप्ति के लिये मानव की अंततः आवश्यकताओं की व्याख्या करता है। परन्तु उस प्रक्रिया के स्वरुप की व्याख्या भक्तिभाव से कर्म करने में है। इसी अवस्था में मनुष्य कर्म के प्रति सम्पूर्ण अवधान केन्द्रित कर सकता है तथा सम्पूर्ण अवधान केन्द्रित करके कर्म करने वाला मनुष्य ही अपने परम लक्ष्य को पाता है।

गीता में एकाग्रचित होने की महत्ता का वर्णन किया गया है। मोह रहित स्थिर बुद्धि व्यक्ति भौतिक सुखों की ओर ध्यान नहीं देता और अन्तर सुखों का अनुभव करता है ऐसा व्यक्ति ही असीत सुखों को भोगता है । यह बात मनोवैज्ञानिक रीति से भी सिद्ध है कि भौतिक सुखों में लीन व्यक्ति अपनी क्षमताओं का उपयोग पूर्ण शक्ति के साथ नहीं कर सकता, जिसके चलते वह अपने भौतिक लक्ष्यों को भी नहीं प्राप्त कर पाता। अस्थिर बुद्धि संवेग की वह मनोवैज्ञानिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने कर्म को सम्पूर्ण अवधान के साथ सम्पन्न नहीं कर पाता।

गीता में इसी अस्थिर मानसिक विकृति को नियन्त्रण करने की प्रक्रिया समझायी गयी है –

यतेन्द्रिय मनो बुद्धि मुर्नि मोक्षपरायण।
विगतेच्छाभय क्रोधो यः सदा मुक्त एव स। (श्लोक–5/28)

अर्थात् समस्त इन्द्रिय विषयों को अवधान से बाहर करें, दृष्टि को भौहों के मध्य में केन्द्रित करके श्वांस प्रक्रिया को नथुनों के भीतर रोकने का अभ्यास कर साधक भय तथा क्रोध की अवस्थाओं से रहित हो जाता है ।

श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को संवेग नियन्त्रण की दी गई शिक्षा अष्टांग योग में वर्णित है जिसका प्रतिपादन महर्षि पातंजलि ने किया है, अष्टांग योग में अभ्यास कर मनुष्य उक्त स्थिति को प्राप्त कर सकता है जो भय तथा क्रोध आदि जैसी संवेगात्मक अवस्थाओं से रहित है यह अष्टांग योग आठ अवस्थाओं में विभाजित हैं–

अष्टांग योग

1. **यम (संयम):** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह
2. **नियम (सदाचार का पालन):** शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईशः प्राणिधान
3. **आसनः** (शरीर की ऐसी अवस्था जिसमें देर तक निश्चित होकर सुखपूर्वक बैठ सके। यह कई प्रकार के होते हैं) – पदमासन, वीरासन, भद्रासन, शीर्षासन, मयूरासन, शवासन
4. **प्राणायामः** (श्वांस पर नियन्त्रण) – पूरक, कुंभक, रेचक
5. **प्रत्याहारः** (इन्द्रियों को अपने–अपने बाहरी नियमों से खींचकर मन के वश में करना)
6. **धारणाः** (चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करना)
7. **ध्यानः** (ध्येय विषय का निरन्तर मनन करना)
8. **समाधिः** (ध्यान की एकाग्र चित्त अवस्था)

इस अष्टांग योग में प्रथम 4 अवस्थायें गृहस्थ मनुष्यों के लिये अत्यन्त उपयोगी है और अन्तिम 4 योगियों के लिये हैं। प्रथम 4 अवस्थाओं का निरन्तर अभ्यास करने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों के ऊपर नियन्त्रण पाकर भय तथा क्रोध जैसी सांवेगिक अवस्थाओं को दूर कर सकता है बुद्धि को स्थिर कर सकता है और अन्तःत अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

योग और योगी व्यक्तित्व की विशेषताओं का मनोविज्ञान

1. अनाक्षितः कर्मफलं.....युक्ततमो मत। (47)

श्रीमद्भगवदगीता का छठवां अध्याय योग व योगी की विशेषताओं का मनोविज्ञान है। ऐसी विशेषता जिसमें वह कर्म फल की परवाह किये बिना कर्म करता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ए. मेस्लो के

विचार कुछ इसी तरह के हैं इनके अनुसार मानव जैविक, मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं को पार करता हुआ जीवन के विकास पथ पर आत्म सिद्धि या आत्म साक्षात्कार की आवश्यकता के शिखर तक पहुँचने का पूर्ण क्षमता के साथ प्रयास करता रहता है। मेस्लो का यह जीवन आवश्यकताओं के क्रम का मनोविज्ञान है। गीता में जीव की प्रारम्भिक अवस्था को अधर्म अवस्था कहा है जिसे मेस्लो जैविक अवस्था कहते है गीता में अन्तिम 'अवस्था को आध्यात्मिक अवस्था कहा है जबकि मेस्लो उसे आत्म साक्षात्कार की अवस्था कहकर जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर अन्तिम वर्षों तक आवश्यकताओं के क्रम का मनोविज्ञान कहते हैं। आवश्यकताओं का यही क्रम गीता में योग के नाम से कहा गया है और जो पुरुष आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है वही योगी है।

योग, योगाभ्यास तथा योगी के व्यक्तित्व की विशेषताओं को सुनकर अर्जुन के मन में प्रश्न आया और उसे श्रीकृष्ण से कह दिया वर्णित योग पद्धति व्यावहारिक सी लगती है परन्तु सहन शक्ति के बाहर भी है क्योंकि मन की विशेषता विचलन शीलता होती है अतः उसे वायु के समान वश में करना कठिन है गीता में कहा भी गया है किः–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोखि सुश्रुश्करम्।। (श्लोक–6/34)

मनोविज्ञान भी अवधान की अवस्था को विचलन शीलता की अवस्था मानता है। तव कृष्ण भगवान समझाते हुये कहते हैं कि मन चंचल तो होता है परन्तु अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा इसे स्थिरता प्रदान की जा सकती है। मन को बार–बार ध्येय में लगाना तथा राग, द्वेष रहित होना ही वैराग्य है। मनोविज्ञान का कथन है कि मन (अवधान) की चंचलता समाप्त नहीं की जा सकती है परन्तु उसे काफी हद तक स्थिरता प्रदान की जा सकती है जो किसी भी कार्य की सम्पन्नता के लिये अति आवश्यक है। मन यदि वश में नहीं है तो लक्ष्य पाना कठिन हो जाता है। पातंजलि योग में चित्त की वृत्ति का निरोध ही अभ्यास बताया गया है। इस अभ्यास में ही मनुष्य के लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग छिपा है। जब व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं के साथ अपनी आत्मशक्ति का विकास कर पाने में समर्थ होता है तब उसे आत्म साक्षात्कार (लक्ष्य) प्राप्त होता है। असफल व निराश मनुष्यों के लिये भी गीता में प्रयास तथा पुर्नप्रयास की अवस्था बताई गयी है। प्रयास तथा पुनर्प्रयास की अवस्थाऐं मनोवैज्ञानिक हैं। कबीरदास जी ने कहा भी है कि–

करत–करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत–जात तैं सिल पर होत निसान।।

मनोविज्ञान में भी कहा गया है कि जब सरलतम क्रियाओं के अधिगम के लिये अभ्यास तथा पुनर्प्रयास की आवश्यकता होती है तब जटिलतम मानसिक क्रियाओं के अधिगम के लिये कठिनतम प्रयासों तथा पुर्नप्रयासों की और अधिक आवश्यकता होगी तथा उच्च अधिगम योगाभ्यास से ही प्राप्त होता है। किसी भी क्षेत्र में विशेष योग्यता अर्जित करने के लिये मनुष्य को निश्चित रुप से अवधान में एकाग्रता के साथ अभ्यास पुनः अभ्यास करते हुये विशेष योग्यता प्राप्त करनी होती है।

निष्काम, कर्म तथा स्थिर बुद्धि का मनोविज्ञान

1. तं तथा कृप्या विश्टमश्रुपूर्णा कुलेक्षणम्.....बृह्मनिर्वाणे मृच्छति (72)

शोक में व्याकुल अर्जुन जब रथ के पिछले भाग में बैठ गया और निश्चय कर बैठा कि उसे अब स्वजनों से कुरुक्षेत्र में युद्ध नहीं करना है तब ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण के मस्तिष्क में यह विचार आया कि ''युद्ध न होने का परिणाम यह होगा कि अत्याचारी कौरव विजयी होंगे और सर्वत्र सत्य के बजाय असत्य, अत्याचार तथा अनाचार का बोलबाला होगा जो आर्यावर्त के लिये हितकर न होगा। अतः युद्ध होना आवश्यक है जिससे असत्य पर सत्य की विजय पताका फहराती रहे। ऐसी स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के असामान्य व्यवहार का निदान तथा उपचार करने के लिये ऐसे मार्मिक शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसका प्रभाव ही महाभारत में अर्जुन को विजयश्री दिलाता है।''

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण ने एक ऐसे प्रभावकारी नैदानिक मनोविज्ञानी की भूमिका निभाई जिसके मार्मिक विषय तथा शब्दावली शोकाकुल तथा द्वन्दात्मक स्थिति से भरे अर्जुन में निर्णय की क्षमता की वृद्धि करते हैं जिससे अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो जाता है। कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध होना इसलिये भी आवश्यक था कि उस समय जनहित में अनाचारियों का प्रभाव सदैव के लिये समाप्त हो जाये। जनकल्याण का यही भाव मनोविज्ञान की दृष्टि से निदानात्मक भाव है।

इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये द्वन्दात्मक स्थिति से भरे अर्जुन को श्रीकृष्ण ने उपदेश देकर उसमें युद्ध करने की जो क्षमता उत्पन्न की उसके प्रमुख आधार रहे–

1. फल की प्राप्ति में अवधान केंन्द्रित न कर अपितु फल की प्राप्ति हेतु जो क्रिया है उसमें सम्पूर्ण अवधान लगाना निष्काम कर्म।
2. व्यक्ति का स्थिर बुद्धि वाला होना अति आवश्यक है तभी वांछित फल की प्राप्ति सम्भव है स्थितप्रज्ञ।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन का कर्म गाण्डीव के साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध की सम्पूर्ण क्रिया पर अवधान केन्द्रित करना था न कि युद्ध के उपरान्त हार अथवा विजय के लक्ष्य में लिप्त होना। श्रीकृष्ण का संदेश अर्जुन के उन विचलित मनोभावों में परिवर्तन ला सका जो सकाम कर्म के साथ फल की वासना में सम्पूर्ण अवधान के साथ ही उलझे थे। सामान्य जन जीवन में तथा नित्य कर्म में भी हमें उसी निष्काम भाव से लक्ष्य में लिप्त होकर कर्म की प्रक्रिया में सम्पूर्ण अवधान लगाना चाहिये। सकाम कर्म की भावना से प्रेरित फल में आसक्ति रखने वाले दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं जिससे उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव भी हो जाता है। गीता के संदेशों को यदि हम मनोवैज्ञानिक रीति से विचार करे तो हमारे निष्काम कर्म ही हमें विजय दिला सकते हैं और दिलाते हैं। अतः गीता का निष्काम कर्म का सन्देश दार्शनिक रीति के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक रीति से भी अति महत्वपूर्ण है। गीता में छिपा मनोवैज्ञानिक भाव मानव जीवन के व्यवहार का आवश्यक अंग है। उद्देश्यों की प्राप्ति में सरलता एवं दुरुहता इसी निष्काम कर्म के संदेश पर टिकी है। आज भी इस बात की आवश्यकता है कि गीता के संदेशों में छिपे उन मनोवैज्ञानिक भावों को समझने तथा समझाने की. जिन पर चिंतन मनन तथा विश्लेषण कर मानव जीवन को सदुपयोगी तथा सुसमायोजित बनाया जा सकें यही मानव कल्याण का सहज मार्ग है यही मार्ग सुसमायोजित समाज की स्थापना में सहायक हो सकता है।

स्थिर बुद्धि (स्थिरप्रज्ञ)

कर्म के समय व्यक्ति का स्थिर बुद्धि वाला होना अति आवश्यक है। स्थिर बुद्धि ही वांछित फल की प्राप्ति में सहायक हो सकती है। स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति मोह रुपी सघन वन को पार कर आत्म साक्षात्कार की समाधि में स्थिर होकर दिव्य चेतना प्राप्त कर लेता है। कर्म के समय जब व्यक्ति अपना आत्म सभी इन्द्रियों की तरफ से हटाकर समस्त कामनाओं का त्याग कर. मन का विचलन समाप्त कर सभी सांवेगिक अवस्थाओं से युक्त होता है, वही दिव्य चेतना प्राप्त स्थिर बुद्धि व्यक्ति है।

प्रजहाति यदा कामा सर्वान्यार्थ मनोगतान्।
आत्मन्ये वात्मना तुश्टः सियत प्रसक्त दोच्यते । (श्लोक–2/55).

''मन की विचलन शीलता इन्द्रियों को वश में न करने से उत्पन्न होती है। इन्द्रियों के वश में रहने से आसक्ति, आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मरण शक्ति का भ्रमित हो जाना तथा स्मरण भाक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अस्थिर होकर नष्ट हो जाती है और इस प्रकार अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति कर्म करने का अधिकारी नहीं है।'' इस तरह मन की चंचलता से प्रायः समस्त बौद्धिक क्षमतायें समाप्त हो जाती है। जो कि कर्म सम्पादन में पूर्ण व्यवधान उत्पन्न करती है। अतः कर्म के समय बुद्धि को संवेग रहित होकर मन की चंचलता और विचलन शीलता को त्यागना चाहिये। तभी कर्म सम्भव है। अतः गीता में कहा गया है कि–

''तानि सर्वाणीय संयम्म युक्त आसीत महारः।
वरो हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठा।।'' (श्लोक–2/61)

मानव स्वधर्म, राग–द्वेश व क्रोध का मनोविज्ञान–

1. ज्यायझी चेत्कर्मणस्ते ..... नियोजयसि केशव। (43)

श्रीमद्भगवदगीता के तृतीय अध्याय में इस बात पर बल दिया गया कि कर्मों के न करने से निष्कर्मता तथा कर्मों का त्याग दोनों से ही आत्म सिद्धि (लक्ष्य प्राप्ति) प्राप्त नहीं की जा सकती है। व्यक्ति क्षण भर भी कर्म के बिना नहीं रह सकता है। कर्म करना मानव प्रकृति का गुण है तथा सामान्य दृष्टिकोण से भी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये भी कर्म करना अत्यावश्यक है। इसी में सर्वकल्याण छिपा है। कर्म न करने से शारीरिक तथा मानसिक विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतः कर्म योग का आचरण करने वाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है । गीता में श्लोक–7 में स्पष्ट कहा गया है कि –

''यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारमतेडर्जुन ।
कमेन्द्रियैः कर्म योगमसक्तः स विशिष्यते ।। (श्लोक–3/7)

अर्थात् जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान में भी जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना अत्यावश्यक बताया है। परिश्रमी ही अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। अतः संसार कर्म करने का लक्ष्य है संवेग का नहीं।

गीता के तृतीय अध्याय से यज्ञ, तप विज्ञान आदि को भी बताया गया है। मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि से वातावरण को प्रदूषण रहित बनाने और समाज को कुछ न कुछ समर्पित करने के सुउद्देश्य से यज्ञ विज्ञान, तप आदि का गीता में विधान है। जैसे मनोविज्ञान में कहा गया है कि उद्दीपक से अनुक्रिया जन्म लेती है, जैसा उद्दीपक होगा उसके प्रति वैसी ही अनुक्रिया होगी। यज्ञ भी परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया का मनोविज्ञान है। पृथ्वी को जब हम खाद देते हैं तो हमें अन्न मिलता है। यही लेन–देन (उद्दीपक–अनुक्रिया) यज्ञ का रुप है ।

गीता व्यक्ति में क्रोध की अवस्था को सर्वभक्षी पापी शत्रु मानती है। मनोविज्ञान कहता है कि क्रोध या संवेग की अवस्था में मानसिक क्षमतायें निर्बल . पड़ जाती है और ऐसी अवस्थायें कोई भी तत्काल निर्णय नहीं ले सकती, यहीं से 'मानव पतन का मार्ग प्रशस्त होने लगता है। गीता तथा मनोविज्ञान की समान विचार धारा है कि व्यक्ति की चैतन्य शक्ति संवेगात्मक रूपी अग्नि से जल जाती है । अतः स्वचिंतन करते हुये इस अग्नि को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिये। मनोविज्ञान में अर्न्तदर्शन की व्याख्या के समय भी यही बात कही गयी है कि (गीता के सन्दर्भ से) अपनी समस्त अवस्थाओं को ईश्वर (लक्ष्य प्राप्ति) में समर्पित कर दो जिससे संवेग जैसी अवस्थाऐं अवधान के परिवर्तित होने से पूर्व समाप्त हो जाये ताकि समाज में परस्पर सौहार्द्र का वातावरण बना रहे । परस्पर सौहार्द्र, प्रेम, सहिष्णुता तथा शान्ति मानव जीवन का चरम लक्ष्य है यही नैदानिक मनावैज्ञानिकों ने शास्त्र के प्रमुख उद्देश्यों के रुप में देखा है।

निष्कर्ष

जैसा वर्तमान में कर्म को नकारा नहीं जा सकता। मौलिक सृजन हों, वैज्ञानिक विकास हो, औद्योगिक क्रान्ति हो सभी कर्म पर ही आश्रित है। बिना कर्म के इनका अस्तित्व नहीं है। गीता में स्वधर्म स्वधारण, स्वानुभव, निष्काम कर्म, योग ज्ञान स्थिर प्रज्ञ (बुद्धि) व्यक्तित्व, मानव की जन्मजात सहज प्रवृत्तियाँ, शारीरिक ऐन्द्रिय एवं मानसिक शक्तियों को भी स्थान दिया है। यह सभी तथ्य मनोवैज्ञानिक विचारों के आधार है क्योंकि मनोविज्ञान दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है। यही कारण है गीता में दार्शनिक शैक्षिक मनोवैज्ञानिक विचारों का अभूतपूर्ण समन्वय देखने को मिलता है। गीता के उपदेश आज अत्याधिक उपयोगी प्रतीत होते है। गीता में वर्णित आध्यात्मिकता, नैतिकता एवं मानवतावादी मूल्यों की 21वीं सदी की शिक्षा में अति आवश्यकता है जो मौलिकता के साथ आध्यात्मिक मूल्यों को शिक्षा मानव मात्र को दे सके ताकि मानव सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक दायित्वों का निर्वाह कर सके ।

इस दृष्टि से गीता में शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक विचारों का सुन्दर समन्वय है। जो किसी काल विशेष के उपयोगी नहीं है अपितु वह तो सार्वकालिक है, सर्वोपरि है। समाज के पुर्ननिर्माण, विकास, प्रगति हेतु गीता के शैक्षिक विचारों को ही नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक तथ्यों को भी अपनाना होगा तभी समाज का कल्याण सम्भव है।

सन्दर्भ सूची

1. तिलक, बाल गंगाधर, ''गीता रहस्य'', डायमण्ड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. ग–30 ओखला इडस्ट्रियल एरिया, फ्रेज।
2. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद, ए.सी., ''श्रीमद् भगवद् गीता (1991), भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल।
3. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद, ए.सी., भगवत गीता ज्ञान प्रबोधिनी भाग–1 वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल (2008)
4. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद, ए.सी. 'गीता सार' (2011) भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट इन्टरनेशनल
5. शर्मा, एस. एन. श्रीमद् भगवद् गीता के मनोवैज्ञानिक सामाजिक एवं शैक्षिक आयाम, (2000 एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा
6. शर्मा, सत्यनारायण, श्रीमद् भगवद् गीता के शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार, (वेदान्त ज्ञान श्रंखला), (2002), वेदान्त पब्लिकेशन्स, लखनऊ।